International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 23-02-2023, Accepted: 10-03-2023, Published: 25-03-2023
Volume 9, Issue 2, 2023, Page No. 43-47

'छायावाद' मूल्यांकन के नए परिप्रेक्ष्य

डॉ. स्नेहलता दास
अध्यापिका, हिंदी विभाग, रमादेवी महिला विश्वविधालय, भुबनेश्वर, ओडिशा, भारत

सारांश

हिंदी साहित्य में छायावाद का उन्मेष एक काव्यान्दोलन आंदोलन के रूप में हुआ था। यह काव्यधारा भक्तिकाल के बाद हिंदी साहित्य की एक प्रमुख उपलब्धि है। यह दो दशकों तक हिंदी साहित्य का केंद्रबिंदु बना रहा। वैयक्तिक आत्मानुभूति, आलंकारिकता, प्रकृति चित्रण, प्रेम और सौंदर्य आदि छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएं रही हैं। आज छायावाद को लगभग 100 वर्ष से अधिक हो चुके हैं। इन 100 वर्षों में छायावाद के नामकरण एवं उद्देश्य के अर्थापन को लेकर कई मतों की स्थापना हो चुकी है। समय–समय पर आलोचकों ने इन मतों का खंडन–मंडन भी किया है और यह प्रक्रिया आज भी जारी है।

मूल शब्दः छायावाद, छायावाद का मूल्यांकन, छायावाद का नामकरण, छायावादी काव्य शैली, छायावादी काव्य विशेषताएं

'छायावाद' आधुनिक हिंदी साहित्य का वह स्वर्णीम काव्य–संसार है जिसने पाठकों की और साहित्य सर्जकों की रस–पिपासा को अपना सर्वस्व दे कर प्रतिक्रिया स्वरूप मिली रहस्य, पलायन, वैयक्तिकता, मादकता और निराशा के काव्य होने की लांछना को मंद–मुस्कान के साथ अपनी रसपूर्ण पंक्तियों में सराबोर कर अपनी श्रेष्ठता और उपादयेता प्रतिपादित करते हुए आलोचना संसार में अपनी शताब्दी पूर्ण कर ली है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि 'छायावाद' को अपने उदयकाल से लेकर आज तक आलोचना और आलोचकों का सामना करना पड़ा। सौ वर्षों से अधिक आलोचना चक्र का विषय बने रहना ही आज के यांत्रिक युग में 'छायावाद' जैसी भावमयी काव्यधारा की उपस्थिति दर्ज कराने में सहायक सिद्ध हुआ, क्योंकि किसी विषय की आलोचना उसे जीवंत बनाए रखती है और आलोचना से च्यूत श्रेष्ठ विषय भी कालस्रोत में विलीन हो जाते हैं। परंतु कहने का तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि 'छायावाद' एक खोखला काव्यदृ काल था जिसे केवल आलोचना के माध्यम से जीवित रखा गया। वास्तविकता तो यह है कि यह काव्यधारा सागर के समान गहरी और मूल्यवान वस्तुओं की खान है जिसमें आलोचकों ने जितना गहरा गोता लगाया उनके हाथ उतने ही मोति लगे। वे आज भी कार्यतत्पर हैं और छायावाद रूपी महोदधि आज भी आलोचना के नवीन आयामों के साथ विद्यमान।

सर्वप्रथम छायावाद को अपने नामकरण और सीमांकन के विवादों से जूझना पड़ा। परंतु छायावाद के संदर्भ में सीमांकन का प्रश्न उतना जटिल नहीं था जितना नामकरण का। जहाँ आचार्य शुक्ल और नामवर सिंह को सन् 1918 से इसका प्रारंभ स्वीकार्य है, वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और बच्चन सिंह आदि को सन् 1920 से। उसी प्रकार किसी ने पंत के 'युगांत' (1936) से तो किसी ने निराला की 'अनामिका' (1938) से इस काव्यकाल का समापन स्वीकारा। परंतु इसका समाधान डॉ. नगेंद्र के इन शब्दों में मिलता है, "वर्ष विशेष से किसी साहित्यिक युग का आरंभ मानने में थोड़ा–बहुत मतभेद हो सकता है। इसलिए जब छायावाद का आरंभ सन् 1918 में और अंत सन् 1938 में माना जाता है, तो इन दोनों सीमाओं का आधार इन वर्षों की और इनके आस पास दोदृचार पहले या दोदृचार साल बाद–की रचनाएँ होती हैं और इसलिए दोनों छोरों को दोदृचार साल इधर या उधर सरकाया जा सकता है।"[1]

जहां तक नामकरण का प्रश्न है तो, "साहित्य के इतिहास में किसी भी रचना–धारा के लिए कोई नामकरण कभी पूरे तौर पर तोषप्रद नहीं हो सकता; 'छायावाद' भी नहीं है।"[2] परंतु हद तो तब होती है जब आलोचक समाधान हेतु यह लिखते हैं कि, "छायावाद का स्वयं में कोई अर्थ नहीं है।"[3] जिस 'छायावाद' नाम का अर्थ स्पष्ट करने में महान आलोचकों ने अपनी पुस्तकों के कई पन्ने खपाए हों, जिस नाम ने अपने भीतर समकालीन अन्य काव्यधाराओं को समाहित कर लिया हो, जिसकी छाप आलोचकों ने गद्य–साहित्य पर भी ढूंढ निकाली हो, उसे अपने संदर्भ में अर्थहीन कहना कहाँ तक उचित है? आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि, "'छायावाद' शब्द केवल चल पड़ने के ज़ोर से ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने में यह शब्द एकदम असमर्थ है।"[4] बच्चन सिंह ने अपने 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में छायावाद के स्थान पर नए के चलन की ऐतिहासिक आवश्यकता को कारण दर्शाते हुए इस युग का नाम 'स्वछंदतावाद–युग' ही कर दिया है। उनका मानना है कि इससे दो समस्याओं का हल हो जाता है, "एक तो तत्कालीन गद्य–पद्य को एक ही शीर्षक के अंतर्गत अधिक सार्थक ढंग से विवेचन किया जा सकता है; दूसरा यह कि यह अन्य भारतीय साहित्यों और भारतियेत्तर साहित्यों के स्वच्छंदतावादी आंदोलनों (रोमैंटिक मूवमेंट्स) से जुड़ जाता है।"5

'छायावाद' नाम का प्रयोग किस प्रकार बंगला से हिंदी में आया, इसे आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में दर्शाया; परंतु हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि, "यह शब्द बिल्कुल नया है। यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यों को बंगला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिंदी में आया है।"6 सामान्यतः आलोचकों ने 'छाया' शब्द के अर्थ के आधार पर 'छायावाद' की उपयुक्तता और अनुपयुक्तता की जाँच की। सारा बवाल 'छाया' शब्द को लेकर ही मचा। किसी ने इसका अर्थ 'प्रभाव या अनुकरण' माना, किसी ने 'सूक्ष्म और वायवीय', तो किसी ने 'अस्पष्ट'। आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में स्वीकारा; एक रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से है तो दूसरा 'काव्यशैली या पद्धतिविशेष' के व्यापक अर्थ में। पहले अर्थ को तो यूरोप से बंगला में अनुकृत और फिर धार्मिक क्षेत्र से साहित्यिक क्षेत्र में आयातित बताया, जिसका खंडन प्रायः सभी आलोचकों ने आगे चल कर किया। उन्होंने दूसरे व्यापक अर्थ को फ्रांस के प्रतीकवाद से जोड़ दिया और हिंदी में रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की रचनाओं के संबंध में उनमें प्रयुक्त प्रतीक शैली के अर्थ में ग्रहण किया। ध्यान देने की बात यह है कि

उन्होंने छायावाद का सामान्य अर्थ निरूपित करते हुए लिखा; ”छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।“[7] वहीं नंददुलारे वाजपेयी का कथन है–” मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।“[8] इनके ‘अध्यात्मिक छाया का भान’ को बच्चन सिंह शुक्लजी का ‘प्रतिबिंबवाद’ ही स्वीकारते हैं। शुक्ला जी के ‘छायावाद’ की व्याख्या को बच्चन सिंह कुछ इस प्रकार देखते हैं, ”शुक्ल जी छायावाद को सच्चे स्वच्छंदतावाद यानी श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी की काव्यधारा से काटकर अलग कर देते हैं। दूसरे शब्दों में वह अपनी परंपरा से कटा हुआ काव्य है। इसे सिद्ध करने के लिए इस पर अभारतीयता का आरोप लगाते हैं। अपनी प्रचलित आलोचना–पद्धति के अनुरूप वे छायावाद की विषयवस्तु को रहस्यवाद कहते हैं और काव्य–शैली को चित्र–भाषावाद या प्रतीकवाद। अब उन्हें यह सिद्ध करना शेष रह जाता है कि इसकी वस्तु और शैली दोनों विदेशी हैं।“[9]

छायावाद के विशिष्ट साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने स्वयं ‘छायावाद’ के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु दो लेख ‘रहस्यवाद’ और ‘यथार्थवाद और छायावाद’ लिखे। उनमें से पहले में उन्होंने शुक्लजी के उस मत का विरोध किया जिसमें उन्होंने ‘रहस्यवाद को अभारतीय कहा’, साथ ही ‘रहस्यवाद की सौंदर्यमयी व्यंजना’ को छायावाद कहा। जिसके संबंध में बच्चन सिंह लिखते हैं प्रसाद के अनुसार ”यदि रहस्यवाद को अभारतीय न माना जाए तो यही छायावाद है!“[10] बात यह है कि प्रसाद छायावाद के प्रमुख स्तंभ हैं जिनकी कोई सानी नहीं अतः उन्होंने स्वयं छायावाद के संबंध में जो लेख लिखें और मंतव्य प्रकट किया उसको सभी आलोचकों ने अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य किया। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने प्रसाद की छायावाद की व्याख्या को आधार बनाकर छायावाद को ‘शक्ति–काव्य’ घोषित किया और लिखा, ”कवि प्रसाद ने संस्कृत प्रयोगों के साक्ष्य पर ‘छाया’ की व्याख्या की–‘मोती के भीतर की जैसी तरलता’। ‘छाया’ का अर्थ पानी, आब, चमक, कांति लेते हुए उन्होंने निष्कर्षतः कहा, ”छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है।“ ... ‘छाया’ के प्रभाव, सूक्ष्म और अस्पष्ट जैसे अर्थों का प्रत्याख्यान करते हुए, और उसे महज प्रकृति–कार्य से अलग करके उन्होंने (प्रसाद ने) छायावाद की संरचना में चमक और कांति पर बल दिया। यह चमक और कांति शक्ति की ही एक पहचान है। इस तरह छायावाद महज संध्या–सुंदरी, चांदनी–रात या नौका विहार का चित्र नहीं है। वह मूलतः शक्ति–काव्य है, पुनर्जागरण चेतना का व्यापक और सूक्ष्म रूप है, और अपनी अर्थ–प्रक्रिया में मानव व्यक्तित्व को गहरे स्तरों पर समृद्ध करता है।“[11] रामस्वरूप चतुर्वेदी का यह कथन छायावाद पर लगे कई आरोपों का खंडन करता है।

‘छायावाद काल’ नाम की युक्तियुक्तता को सिद्ध करने हेतु डॉ. नगेंद्र ने इस युग में उपलब्ध विपुल काव्यराशि को दो धाराओं में विभाजित किया; एक राष्ट्रीयदृसांस्कृतिक धारा की रचनाएं और दूसरी छायावादी रचनाएँद्य डॉ. नगेंद्र का मानना है कि यद्यपि इस काल में परिमाण की दृष्टि से छायावादी रचनाएँ सबसे अधिक नहीं है फिर भी इस काल का नाम ‘छायावाद काल’ करने के पीछे तीन कारण है; ”पहला तो यह कि कवित्व की दृष्टि से, अर्थात् अनुभूति की तीव्रता, सूक्ष्मता और अभिव्यंजनाशिल्प के उत्कर्ष की दृष्टि से यह काव्यराशि सर्वश्रेष्ठ है। दूसरी बात यह है कि छायावादी काव्य में प्राचीन भारतीय परंपरा के जीवंत तत्वों का ही समावेश नहीं हुआ, वरन् उसने परवर्ती काव्य के विकास को भी काफी दूर तक प्रभावित किया है। छायावादोत्तर युग के कवियों के लिए छायावादी काव्य–राशि ही प्रतिस्पर्धा और प्रतिक्रिया का आधार बनी। और तीसरी बात यह है कि छायावादी काव्य में ही अपने युग के जनजीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति मिलती है। यह काव्य पूर्ण और सर्वांगीण जीवन के उच्चतम आदर्श को व्यक्त करने का प्रयास करता है।“12 बहरहाल आलोचकों ने ‘छाया’ शब्द को लेकर चाहे कितने भी शब्द युद्ध किए हों, परंतु इस ‘छायावाद’ नाम ने अपनी शताब्दी पूर्ण कर ही ली और इस काल को परिभाषित करने के लिए आज भी यही नाम प्रयोग किया जाता है और आगे भी किया जाएगा क्योंकि इसे पाठकों ने ग्रहण कर लिया है और जो पाठकों द्वारा गृहित हो जाए, उस पर चाहे कितनी ही कागजी लड़ाइयाँ हो जाएँ पाठक के मन–मानस से उसे निकालना कठिन है। तब पर से ‘छायावाद’ ने सौ वर्षो से अधिक का समय पाठकों के मन–मस्तिष्क पर राज किया है। आज भी जब इसकी आलोचना और चर्चा–परिचर्चा होती है तो इसी ‘छायावाद’ नाम का ही प्रयोग किया जाता है। हम भी उसी नाम का प्रयोग कर रहे हैं, जिन्हें आपत्ति है वे आलोचना भी कर रहे हैं। साहित्य चक्र सदैव अबाध गति से चल रहा है और चलेगा इसमें कोई दोराय नहीं।

नामकरण के पश्चात् छायावाद पर वैयक्तिकता और पलायन का आरोप लगा। छायावादियों को पलायनवादी कहा गया। आचार्य शुक्ल ने छायावाद का परिचय देते हुए अंतिम अनुच्छेद में लिखा, ”अब तक उनकी (छायावादी कवियों की) कल्पना थोड़ी सी जगह के भीतर कलापूर्ण और मनोरंजक नृत्य सा कर रही थी। वह जगत् और जीवन के जटिल स्वरूप से घबरानेवालों का जी बहलाने का काम करती रही है। अब उसे अखिल जीवन के नाना पक्षों की मार्मिकता का साक्षात्कार करते हुए एक करीने के साथ रास्ता चलना पड़ेगा।“13 अफ़सोस की बात है कि उनके सामने ‘कामायनी’, ‘राम की शक्ति पूजा’, ‘तुलसीदास’ आदि प्रमुख छायावादी कृतियां थी, फिर भी इनके आधार पर वे छायावादियों की सामाजिकता और मानवता के प्रति आस्था को नहीं नाप सके। उन्होंने यही मूल्यांकन किया, ”रहस्यवाद के भीतर आने वाली रचनाएँ तो थोड़ी या बहुत सभी ने उक्त पद्धति (प्रतीकपद्धति या चित्रभाषा शैली) पर की हैं, पर उनकी शब्दकला, वासनात्मक, प्रणयोदगार, वेदना विवृति, सौंदर्य संघटन, मधुचर्या, अतृप्तिव्यंजना इत्यादि में अधिकतर नियुक्त रही। जीवन के अवसाद, विषाद, और नैराश्य की झलक भी उनके मधुमय गानों के मिलती रही। इसी परिमित क्षेत्र के भीतर चित्रभाषाशैली का वे वैलक्षण्य के साथ दर्शन करते रहे।“14 स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल की दृष्टि में छायावादी काव्य का क्षेत्र सीमित है, यह मानव जीवन के विविध पक्षों को नहीं समेटता।

डॉ. नगेंद्र लिखते हैं कि, ”छायावादी कवियों का क्षेत्र व्यापक था। वे पुनर्जागरण से गंभीर रूप से प्रभावित थे और इसलिए उनका क्षेत्र एकदम पलायन, मादकता और निराशा का नहीं था। उनके सामने जीवन का व्यक्ति, जाति और मानव मात्र के जीवन का–भावात्मक पक्ष भी था और इसलिए उनके काव्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति व्यापक मानवीय स्तर पर ही हुई।“15 वहीं समस्वरूप चतुर्वेदी पलायनवादी आरोप का खंडन इन शब्दों में करते हैं, ” छायावादी कवि पर जहाँ अतिभावुकता, सूक्ष्मता और वायवीयता के आरोप लगाए गए हैं, वहीं उनमें पलायनवाद को भी ढूँढ निकाला गया है।... और अनिवार्यतः प्रसाद की एक पंक्ति बार–बार उदाहरण रूप में प्रस्तुत होती है, ”ले चल, वहाँ भुलावा दे कर, मेरे नाविक। धीरे–धीरे।“ बिना इस पूरी कविता को समझे यह आरोप संपूर्ण छायावादी काव्य पर लगा दिया जाता है कि उसमें जीवन के संघर्ष से पलायन करने की वृत्ति है। इस कविता में विश्राम की मुद्रा का चित्रण है या पलायन की आकांक्षा है; यह समझने का यत्न नहीं किया गया। विश्राम तो श्रम का पूरक है और पलायन कर्म, श्रम, संघर्ष से भागना है। ‘कर्म का भोग; भोग का कर्म’ के माध्यम से कर्म और भोग की संश्लिष्ट तथा आधुनिक संदर्भ में नयी दृष्टि प्रस्तुत करने वाले कवि के लिए इससे बड़ी

विडंबना की बात और क्या हो सकती है कि उसे पलायनवादी करार दिया जाए।"16

छायावाद की व्यापकता को दर्शाते हुए डॉ बच्चन सिंह लिखते हैं, "शुक्लजी के मतानुसार छायावाद में नाना अर्थभूमियाँ नहीं हैं। उसमें मुख्यतः प्रेमगान है। पूरा छायावाद काल, जिसे मैं स्वच्छंदतावाद काल कहना चाहूंगा, विषयवस्तु, साहित्यिक विधा और भाषा की दृष्टि से इतना वैविध्यपूर्ण है कि आधुनिक काल में उसका जोड़ मिलना कठिन है। कविता के क्षेत्र में भी देश–प्रेम, क्रांति–गीत, मुक्त प्रेम, मानवीय समता, ऐतिहासिक–पौराणिक मिथक, सामंत–साम्राज्यवाद, विरोध आदि को समेट लिया गया है।"17 उन्होंने शुक्ल जी के दृष्टिकोण पर प्रश्न चिन्ह लगाया और उनकी विवेचना प्रणाली में अंतर्विरोध दिखाया।

यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि छायावादी काव्य का क्षेत्र कितना व्यापक था और मानव जीवन से इसका संबंध किस प्रकार संगुफित था। रामस्वरूप चतुर्वेदी की दृष्टि में 'कामायनी' में मानवता की विजय की चिंता करते कवि को मानवीय संस्कृति के वर्तमान संकट की समझ है और वह इस संकट के बचाव की संभाव्य दिशा संकेतित करता है। थके और पराजित मनु के प्रति श्रद्धा का उद्बोधन इस प्रकार है;

"शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाए।"

यहां मूल संदेश शक्ति के नियोजन का है और संदर्भ राष्ट्रीय होते हुए भी चिंता समस्त मानवता की है।

ऐसे ही निराला की राम की इहलौकिकता को देखिए कि जब रावण के पक्ष में शक्ति को वे देखते हैं तो साधारण मानव की तरह वह भी हताश हो जाते हैं।

"अन्याय जिधर हैं उधर शक्ति कहते छल–छल
हो गए नयन, कुछ बूंद पुनः ढलके दृग जल!"

कहना न होगा कि तत्कालीन समय में अंग्रेज़ों के हाथों में शक्ति को देख जनता की दशा यही थी। ऐसी हताशा की स्थिति मानव जीवन में कभी न कभी आती ही है। परंतु कवि उसे साहस के साथ अपनी सर्जन क्षमता का प्रयोग कर उससे निकलने का राह बताता है और जा जांबवान के माध्यम से राम को परामर्श दिलवाता है।

"शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक ना सिद्धि हो, रघुनंदन!"

यहाँ कवि का कहना है कि तुम्हारी समस्याओं का हल कहीं बाहर किसी का अनुकरण करने में नहीं है अपितु मौलिक रूप से कर्म–साधना करने में है। "शताब्दियों से पराधीन देश को इससे बड़ी और सार्थक दृष्टि कोई नहीं दे सकता। यहाँ राम जितने अपने लिए हैं, उतने ही सामूहिक राष्ट्रीय मन के प्रतीक हैं और उतने ही स्वयं कवि–व्यक्तित्व के। यह कई अर्थ–स्तर एक–दूसरे से टकरा कर मानवीय आत्मा–शक्ति का एक विशद आख्यान प्रस्तुत करते हैं।"18 कवि अंततः अपनी कविता में मानव को विजय के प्रति आश्वस्त कराते और उसके सुप्त आत्मविश्वास को जागृत कराने हेतु लिखते हैं; "होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!" ऐसे भावों को व्यंजित करने वाले कविगण को पलायनवादी कहना, यह कहना कि ये केवल काव्य संगीत तत्व का विधान करते थे, इनके काव्य को एकांगी कहना कहाँ तक उचित है?

छायावाद को भावुकता और शैशव का काव्य समझना, इसकी अतिशय भावमयीता और प्रभावमयीता की निंदा करना, या कहना कि ये कवि केवल वैयक्तिक वेदना का प्रकटीकरण करते हैं, वास्तविक जगत से इनका कोई संबंध नहीं, दृष्टि की संकीर्णता नहीं तो और क्या है? महान छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने यथार्थवादी साहित्य की पहचान करते हुए रेखांकित किया है कि, "वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुंचने का प्रयास यथार्थवादी साहित्य करता है।"19 इसकी भावाभिव्यक्ति के सपक्ष में डॉ पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने लिखा है, "कवि की अपनी विह्वलता और वेदना उन्हें कुछ कहने के लिए विवश करती है।"20 अतः इनके भावनात्मक पक्ष को कदापि हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। यही उनकी वह काव्य शक्ति है जिसके कारण आज भी वे कवि याद किए जाते हैं। यह उनकी वस्तुगत संकीर्णता नहीं विशिष्टता है।

छायावादी कवियों ने अपने काव्य में कई स्तरों पर जीवन–मूल्यों और पक्षों का संघर्ष चित्रित किया। उनके जिन काव्यों में विरह और वेदना की अभिव्यक्ति दिखती है उनमें सामान्य द्वंद्व और संघर्ष का अतिक्रमण है। अंतर्जगत की ऐसी अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है। आलोचकों का मानना है कि भारतीय संस्कृति की महत्ता एक बार फिर से स्थापित करने में छायावाद का योगदान केंद्रीय है, जबकि सामान्यतः उसे अतीन्द्रिय अनुभव और कल्पना लोक से जुड़ा हुआ समझा जाता है। छायावादी कवियों का अनुभव इतना सबल हो उठता है कि उसे प्रकृति में और मानवता में जहाँ कहीं पीड़ा दिखती है वह उसे अपनी वेदना का ही रूप लगती है। यह वेदना का अद्वैत है जो भारतीय मनीषी की विशिष्टता है।

छायावादी काव्य में चाहे वह लंबी कविता हो या छोटे गीत, पुनर्जागरण की चेतना अंतर्व्याप्त दिखाई देती है। इन कवियों ने मनुष्य की और प्रकृति की सुप्त चेतना को जगाने का उपक्रम किया। जागरण की कविताओं में 'प्रथम प्रभात', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री' (प्रसाद) 'जागो फिर एक बार', 'प्रिय मुद्रित दृग खोल', 'जागो जीवन धनिके' (निराला), 'जाग बेसुध जाग', 'जाग तुझको दूर जाना' (महादेवी), 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति भारत' (पंत) आदि का स्मरण हो आता है।

छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता के स्वर भी मुखरित हुए हैं। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जो गीत योजना की उसमें राष्ट्रीय भावना की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है। उन्होंने भारत के अतीत गौरव के चित्र अंकित करते हुए देश की महिमा का बखान किया है;

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।"

'पुष्प की अभिलाषा' जैसी राष्ट्रप्रेम की कविता इसी काल की रचना है जिसमें एक पुष्प ने यह इच्छा प्रकट की है कि उसे शहीदों के चरणों तले आने का सौभाग्य मिले;

"मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जाएं वीर अनेक।"

इन कविताओं को अपने समकालीन परिस्थितियों व समाज से कटा हुआ मानना आलोचनात्मक त्रुटि नहीं तो और क्या है? अर्थात् छायावाद किसी भी प्रकार से संकुचित मनोवृति, सीमित चिंतन व वेदना की काव्यधारा नहीं है। इसकी कविताओं को केवल कवि के भावावेग के क्षणों की रचना कहना तर्कसंगत नहीं। विशेष करके इनके मुक्तकों की तुलना गुलदस्तों के संग करना इनका अवमूल्यन करना ही है।

छायावादी काव्य ने मानव के बाह्य जगत को उसके अंतर्जगत के साथ पीरोने का कार्य किया है। यह मानवीय आत्मजागृति का काव्य है, जिसको प्रसाद की कामायनी में चरितार्थ होता देखा जा सकता है। "प्रसाद ने बड़ी निष्ठा के साथ प्रदर्शित किया है कि मानवीय संस्कृति देव संस्कृति की तुलना में किसी तरह हीन नहीं

है, वरन् देव संस्कृति जो भौतिकवादी है, 'सुख, केवल सुख' की संस्कृति है उससे आगे का विकसित और सूक्ष्म रूप है। इस काव्य में कवि ने मध्यकालीन हीन भावना से ग्रस्त देवता प्रधान समाज को नए और आधुनिक मानवीय आत्मविश्वास से संपन्न किया है। रचना की है यह दृष्टि संसार के प्रख्यात महाकाव्य में कहीं नहीं मिलेगी।"21 छायावादियों के प्रणय तथा प्रेम चित्रण को आत्मकेंद्रित बताने वालों को ध्यान रखना चाहिए कि ये कवि शैवदृदर्शन, अद्वैत और भक्ति, वेदांत और अरविंददृदर्शन अथवा निर्गुणदृनिराकार की प्रणयानुभूति का आधार ग्रहण कर सामाजिक चेतना को दिशा देने का प्रयास करते हैं। अतः छायावाद की वस्तु व्यापकता पर कुछ कहना शेष नहीं रह जाता। आवश्यकता है अपनी दृष्टि विकसित करने की।

छायावाद अपनी काव्यशैली के लिए भी विवादग्रस्त रहा। तो अपने व्यापक अर्थ में इसे केवल एक शैली विशेष मान लिया जाता है जिसमें लाक्षणिक मूर्तिमता, प्रतीक–विधान, विरोध–चमत्कार, विशेषण–विपर्यय, मानवीकरण, अन्योक्ति–विधान आदि की प्रधानता है। सच कहे तो परंपरावादियों को छायावादी नवीन काव्य शैली और छंद–विरोध समझ में नहीं आती परंतु उचित मूल्यांकनकर्त्ता का मानना है, "मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने वाले कवि के चित्त में उन काव्यरूढ़ियों का प्रभाव नहीं रह जाता, जो दीर्घकालीन परंपरा और रीतिबद्ध चिंतन–पद्धति के मार्ग से सरकती हुई सहृदय के चित्त पर आ गिरी होती है और कल्पना के अविरल प्रभाव में तथा आवेगों की निर्बाध अभिव्यक्ति में अंतराय उपस्थित करती हैं।"22 छायावादी कवियों का चित्त मानवता के मापदंड से सब कुछ देखता है और कल्पना के अविरल प्रभाव से वैयक्तिक आवेगों की आयासहीन अभिव्यक्ति करता है। उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए सौंदर्य के बंधे–संधे आयोजनों–घिसे–घिसाए उपमानों और पीटी–पिटाई उत्प्रेक्षाओं पर आधारित चिंतन–शून्य काव्यरूढ़ियों की आवश्यकता नहीं महसूस होती। यह सच है कि छायावादी काव्य में छंद, अलंकार, रस, ताल, तुक आदि सभी विषयों में गतानुगतिकता से बचने का प्रयत्न है और शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति कोई आस्था नहीं है। परंतु इसके पीछे उनकी तीव्र सांस्कृतिक चेतना काम करती है जिसके फलस्वरूप कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह प्रकट किया। वास्तव में छंद और कविता एक ही चीज नहीं है। "कविता भाव–प्रधान होती है और छंद उसके इस रूप में सहायता करता है।"23 छायावादी कवियों ने छंद के बंधनों के प्रति विद्रोह करके उस मध्ययुगीन मनोवृति पर आघात किया था, जो इस प्रकार की मान्यता रखता था। परंतु छायावादी कवियों का ऐसा करने के पीछे उद्देश्य छंद की अनुपयोगिता सिद्ध करना नहीं था। उन्होंने केवल कविता में भावों की स्वच्छंद अभिव्यक्ति को महत्व देना चाहा। जिसे हम मुक्त–छंद कहते हैं, उसमें भी एक प्रकार का झंकार और एक प्रकार का ताल विद्यमान है। इसकी पुष्टि आलोचकों ने कर ही दी है।

जहाँ तक इस काव्यधारा की चित्रमयी, लाक्षणिक, बिंब–विधायिनी भाषा शैली की बात है, यह तद्युगीन परिवेश व परिस्थितियों की ही उपज है। इनकी अभिव्यंजना पद्धति भी नवीनता और ताज़गी लिए हुए है। छायावादी कवियों ने खड़ीबोली को समृद्ध किया है इसमें कोई दोराय नहीं है। इसकी उपयुक्त विवेचना डॉ. नगेंद्र कुछ इस प्रकार करते हैं, "भाषा का विकास समग्र काव्य चेतना के विकास का ही अंतरंग तत्व होता है। द्विवेदी युगीन काव्य बहिर्मुखी था, इसलिए उसकी भाषा में स्थूलता और वर्णनात्मकता अधिक थी। इसके विपरीत छायावादी काव्य में जीवन की सूक्ष्म निभृत्त स्थितियों को आकार प्राप्त हुआ, इसलिए उसकी शैली में उपचारवक्रता मिलती है, जो मानवीकरण आदि अनेक विशेषताओं के रूप में दिखाई देती है। ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली के विवाद के कारण भी छायावादी कवियों ने आग्रहपूर्वक खड़ी बोली को अधिक सूक्ष्म, चित्रात्मक और वक्र बनाया।. छायावादी अभिव्यंजना निस्संदेह अर्थ–गांभीर्य के उस उत्कर्ष तक पहुँच जाती है जिससे आगे जाने की संभावना नहीं रहती। हां, कोई चाहे तो दिशा अवश्य बदल सकता है।" छायावादी अभिव्यंजना–पद्धति की विशिष्टता और सांकेतिकता के पीछे मनोजगत की गहराई को वाणी में संजोने का प्रयत्न कार्य करता है। जिसके लिए कवि सूक्ष्म भाषा का प्रयोग करते हैं। ये कवि अपनी उर्वरा कल्पना–शक्ति का उपयोग कर अनुभूति के विविध पक्षों और प्रसंगों की उद्भावना करने हेतु प्रतीकों तथा बिम्बों की सर्जना करते हैं। छायावादी भाषा की विशिष्टता उसमें प्रकृति के समायोजन का भी फल है, क्योंकि इन कवियों ने रचनात्मक स्तर पर प्रकृति का सीमित और सटीक उपयोग किया है। जहाँ तक श्रृंगार–वर्णन और सूक्ष्म परिकल्पना–प्रधान चित्रमयी भाषा को रीतिकालीन अनुकरण का फल मानने की बात है तो यह परंपरा और प्रयोग का स्वस्थ रिश्ता है, इस आधार पर छायावादियों के काव्य अथवा उनकी भाषा का अवमूल्ययन करना मूर्खता है। इन कवियों ने अपनी भाषा–प्रयोग की कुशलता सर्वत्र सिद्ध की है। इनका काव्य हिंदी का ऐतिहासिक धरोहर है। जहाँ एक ओर इनकी ओजमयी वाणी में रोमहर्षक झंकार है, जिसे बार–बार सुनने व गुनने का मन करता है;

"अनिमेष–राम–विश्वजिद्दीव्य–शर–भंग–भाव–विध्दांग–बद्ध–कोदंड
–मुष्टि–खर–रुधिर–स्राव।"

वहीं दूसरी ओर इनकी शांत, स्निग्ध, कोमल पंक्तियां मानव मरुमन में जलस्रोत का कार्य करती हैं;

"शांत स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल!
अपलक अनंत, नीरव भू–तल!

सैकत–शय्या पर दुग्ध–धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म–विरल, लेटी हैं श्रांत, क्लांत, निश्चल!"

इनकी वेदनामयी वाणी में मानव अपनी वेदना का प्रस्फुटन देखता है;

"झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी, नीरद माला
पाकर इस शून्य ह्रदय को सबने आ डेरा डाला।"

इन उदाहरणों से यह बात तो स्पष्ट हो ही जाती है की जो इन कवियों के काव्य से वास्तव में परिचित है, वह कदापि इनकी भाषा शैली और अभिव्यंजना पद्धति पर कटु–प्रहार नहीं करेगा। अतः इनकी भाषा को रहस्यमय और दुरुह कहना अज्ञानता का प्रतीक है, क्योंकि जिसे न जाना जा सके वही रहस्य है, ज्ञात कभी रहस्य नहीं रहता। छायावादियों की भाषा को समझने के लिए ह्रदय अंतराल में पैठ होना आवश्यक है, केवल थोथा कोषीय शब्द ज्ञान से भला क्या प्रयोजन?

अंततः यह दृष्टव्य है कि छायावादीय आलोचना कितनी विस्तृत व गंभीर है। गोताखोर गहरे पानी में पैठ जितना पा सके, वह उसकी दक्षता है। 'छायावाद' के संबंध में बहुत आलोचना हो चुकी है। इसकी समयसीमा, नामकरण, विषय–वस्तु, अभिव्यंजना–प्रणाली, भाषा व शैली पर बहुत वाद–विवाद हो चुके। तथापि आज छायावाद के मूल्यांकन के नवीन परिप्रेक्ष्य उद्घाटित हो रहे हैं, और होंगे भी। आवश्यकता है तो बस निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने की।

संदर्भ सूची

1. सं–डॉ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं–514
2. चतुर्वेदी रामस्वरूप; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं–107
3. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.सं–329
4. द्विवेदी हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, पृ. सं–242

5. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.सं–321
6. द्विवेदी हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, पृ.सं–243
7. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं–315
8. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.सं–330
9. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.सं–331
10. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.सं–330
11. चतुर्वेदी रामस्वरूप; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं–110
12. सं–डॉ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं–515
13. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं–399
14. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं–395
15. सं–डॉ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं–518
16. चतुर्वेदी रामस्वरूप; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं–114
17. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.सं–332
18. चतुर्वेदी रामस्वरूप; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं–110
19. लेख–छायावाद : वाद और विवाद के बिंदु, ओमप्रकाश सिंह, पृ.सं–14, पत्रिका–सत्राची अंक–18 (छायावाद विशेषांक) जनवरी–मार्च, 2018
20. पत्रिका–सत्राची अंक–18 (छायावाद विशेषांक) जनवरी–मार्च, 2018
21. चतुर्वेदी रामस्वरूप; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं–118
22. द्विवेदी हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, पृ.सं–243
23. द्विवेदी हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, पृ.सं–245
24. सं–डॉ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं–527–28.